पञ्चदश अध्याय

[ब्रह्मविज्ञानयोगोपदेश-वर्णन]

पार्वती का जन्म

नारद०— "ब्रूहि देव महेशान यथा सा परमेश्वरी।
बभूव मेनकागर्भे पूर्णभावेन पार्वती॥ १॥

नारद— हे देव, महेश्वर! यद्यपि वह देवी महेश्वरी मेनका के गर्भ में अपने सम्पूर्ण अंश से जैसे आयी आप हमें बताइये।। १।।

श्रुतं बहुपुराणेषु ज्ञायतेऽपि च यद्यपि।
जन्मकर्मादिकं तस्यातस्तथापि परमेश्वर॥ २॥
श्रोतुं तदिष्यते त्वत्तो यतस्त्वं वेत्सि तत्त्वतः।
तद्वदस्व महादेव! विस्तरेण महामते!"॥ ३॥

यद्यपि उसके जन्म-कर्म आदि को मैंने बहुत से पुराणों के माध्यम से अन्यत्र भी सुना है और मुझे ज्ञात भी है तो भी हे परमेश्वर! मैं वह सब आप से सुनना चाहता हूँ; क्योंकि आप उसे यथार्थ रूप से अधिक अच्छी तरह जानते हैं। अतः हे महामते! हे महादेव! उसे आप कृपया मुझे विस्तार से सुनाइये"।। २-३।।

श्रीमहादेव०—त्रैलोक्यजननी दुर्गा ब्रह्मरूपा सनातनी।
प्रार्थिता गिरिराजेन तत्पत्न्या मेनयापि च॥ ४॥
महोग्रतपसा पुत्रीभावेन मुनिपुङ्गव!
प्रार्थिता च महेशेन सतीविरहदुःखिना॥ ५॥

श्रीमहादेव— हे मुनिश्रेष्ठ! जगन्माता भगवती दुर्गा अविनाशिनी एवं ब्रह्मस्वरूपिणी हैं, उसको अपनी पुत्री रूप में प्राप्ति के लिये हिमालय तथा उस की पत्नी मेनका ने भी आराधना की थी।। ४।।

उधर सती के वियोग से दुःखी भगवान् शङ्कर भी उसको पुनः पत्नीभाव से प्राप्ति के लिये उग्र तप कर रहे थे।। ५।।

प्रययौ मेनकागर्भे पूर्णब्रह्ममयी स्वयम्॥ ६॥
ततः शुभदिने मेना राजीवसदृशाननाम्।
सुषुवे तनयां देवीं सुप्रभां जगदम्बिकाम्॥ ७॥

अतः वह पूर्णब्रह्मरूपा भगवती देवी मेनका के गर्भ में आयी। फिर किसी शुभ दिन उस कमलवत् सुन्दर मुखवाली एवं प्रभायुक्त, जगन्माता को मेनका ने अपनी कोंख से पैदा किया।। ६–७।।

ततोऽभवत् पुष्पवृष्टिः सर्वतो मुनिसत्तम।
पुण्यगन्धो ववौ वायुः प्रसन्नाश्च दिशो दश॥ ८॥
तथाद्रिराजः श्रुत्वा तु पुत्रीं जातां शुभाननाम्।
तरुणादित्यकोट्याभां त्रिनेत्रां दिव्यरूपिणीम्॥ ९॥
अष्टहस्तां विशालाक्षीं चन्द्रार्धकृतशेखराम्।
मेने तां प्रकृतिं सूक्ष्मामाद्यां जातां स्वलीलया॥ १०॥

इस शुभ अवसर पर हे मुनिश्रेष्ठ! सब तरफ से पुष्पवृष्टि होने लगी। पवित्र सुगन्ध से मिश्रित वायु सब तरफ बहने लगी तथा सभी दिशाएँ प्रसन्न हो गयीं तथा पर्वतराज हिमालय भी अपने घर में पुत्री का जन्म सुनकर प्रसन्न हुए। उस पुत्री की आभा करोड़ों बाल सूर्यों के समान थी, उसके तीन नेत्र थे, वह दिव्य रूपवाली थी, उसके आठ हाथ थे, उसकी आँखें विशाल थीं, उसके मस्तक पर अर्धचन्द्र शोभित था। उसे वे नगाधिराज स्वलीला से समुद्भूत सूक्ष्मा आद्या प्रकृति देवी मानते थे।। ८–१०।।

तदा हृष्टमना भूत्वा विप्रेभ्यो प्रददौ बहु।
धनं वासांसि च मुने दोग्ध्रीर्गाश्च सहस्रशः।
द्रष्टुं प्रतिययौ चाशु बन्धुभिः परिवारितः॥ ११॥

इस शुभ अवसर पर उन्होंने ब्राह्मणों को बहुत मात्रा में दान किया। जिसमें धन भी था, वस्त्र भी थे और हजारों दूध देने वाली गौएँ भी थीं। पुत्री को देखने के लिये उनके पारिवारिक जन सब तरफ से आने लगे।। ११।।

ततस्तमागतं ज्ञात्वा गिरीन्द्रं मेनका तदा।
प्रोवाच "तनयां पश्य राजन् राजीवलोचनाम्।
आवयोस्तपसा जाता सर्वभूतहिताय च॥ १२॥

उस समय मेनका नगाधिराज को घर में आया देखकर, उनसे बोली– "हे राजन्! आप अपनी इस कमलनयना पुत्री को देखिये जो यह हम दोनों के तप के प्रभाव से, सभी प्राणियों के हित में हमारे घर में उत्पन्न हुई है"।। १२।।

ततः सोऽपि निरीक्ष्यैनां ज्ञात्वा तां जगदम्बिकाम्॥ १३॥
प्रणम्य शिरसा भूमौ कृताञ्जलिपुटः स्थितः।
प्रोवाच वचनं देवीं भक्त्या गद्गदया गिरा॥ १४॥

तब उस नगाधिराज ने भी अपनी पुत्री को देखा और उसको जगदम्बिका मानते हुए। उन्हें शिर से प्रणाम कर, हाथ जोड़कर वह भूमि पर खड़े हो गये। और गद्‌गद वाणी में उन भगवती से यों बोले—।। १३–१४।।

हिमालय— **का त्वं मातर्विशालाक्षि चित्ररूपा सुलक्षणा।**
न जाने त्वामहं वत्से यथावत्कथयस्व माम्''॥ १५॥

हिमावान्— हे माता! हे विशाल नेत्रों वाली! विचित्ररूपवाली, शुभलक्षणों से युक्त आप कौन हैं?— मैं तुम्हें नहीं जानता, कृपया इस विषय में कुछ विस्तार से बताइये।। १५।।

श्रीदेवी०— **''जानीहि मां परां शक्तिं महेश्वरकृताश्रयाम्।**
शाश्वतैश्वर्यविज्ञानमूर्तिं सर्वप्रवर्तिकाम्॥ १६॥

श्रीदेवी— ''मुझे पराशक्ति समझिये। मैं महेश्वर (शिव) पर आश्रित हूँ। मैं अविनाशी, ऐश्वर्य तथा विज्ञानस्वरूप हूँ। मैं आप सब को अपने अपने कार्य में प्रवृत्त कराने वाली हूँ।। १६।।

ब्रह्मविष्णुमहेशादिजननीं सर्वमुक्तिदाम्।
सृष्टिस्थितिविनाशानां विधात्रीं जगदम्बिकाम्॥ १७॥

ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर की जननी (उत्पादिका) हूँ, सभी को मुक्ति देने वाली हूँ। सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय का नियन्त्रण करती हूँ। मैं जगत् की माता हूँ।। १७।।

अहं सर्वान्तरस्था च संसारार्णवतारिणी।
नित्यानन्दमयी नित्या ब्रह्मरूपेश्वरीति च॥ १८॥

मैं सर्वव्यापिका हूँ। साधक को भवसागर से पार करने वाली हूँ। मैं नित्यानन्दमयी, नित्या, ब्रह्मरूपा एवं जगदीश्वरी हूँ।। १८।।

युवयोस्तपसा तुष्टा पुत्रीभावेन लीलया।
जाता तव गृहे तात बहुभाग्यवशात्तव''॥ १९॥

हे तात! आप दोनों (पति–पत्नी) के तप से सन्तुष्ट होकर मैं स्वेच्छा से तुम्हारे घर में, पुत्रीरूप में तुम्हारे सौभाग्य से उत्पन्न हुई हूँ''।। १९।।

हिमालय०—

''मातस्त्वं कृपया गृहे मम सुता जातासि नित्यापि यद्,
भाग्यं मे बहुजन्मजन्मजनितं मन्ये महत्पुण्यदम्।
दृष्टं रूपमिदं परात्परतरां मूर्तिं भवान्या अपि,
माहेशीं प्रति दर्शयाशु कृपया विश्वेशि तुभ्यं नमः''॥ २०॥

हिमवान्— "हे माता! आप नित्य होते हुए भी मेरे घर में पुत्रीरूप से उत्पन्न हुईं— यह मेरे बहुत से जन्म जन्मान्तरों से अर्जित पुण्ययुक्त सौभाग्य का फल है। आप का यह रूप तो मैंने देख लिया, अब हे विश्वेश्वरि! मैं आपके भवानी महेश्वरी वाले रूप के भी दर्शन करना चाहता हूँ। कृपया मुझे उसी रूप का दर्शन कराइये! मैं आपको प्रणाम करता हूँ"।। २०।।

देवी०— **ददामि चक्षुस्ते दिव्यं पश्य मे रूपमैश्वरम्।**
छिन्धि हृत्संशयं विद्धि सर्वदेवमयीं पितः!"॥ २१ ॥

श्रीदेवी— पिताजी! मैं आपको दिव्यचक्षु प्रदान करती हूँ। उससे आप मेरा वह अद्भुत सर्वदेवमय रूप देखिये। उससे आप के सभी संशय मिट जायँगें और आप मुझे सर्वदेवमयी जान सकेंगें।। २१।।

भगवती का प्रथम रूप

श्रीमहादेव०— **इत्युक्त्वा तं गिरिश्रेष्ठं दत्त्वा विज्ञानमुत्तमम्।**
स्वरूपं दर्शयामास दिव्यं माहेश्वरं तदा॥ २२॥

श्रीमहादेव जी बोले— उस भगवती ने यहकहर उन पर्वतश्रेष्ठ हिमालय को दिव्यदृष्टि प्रदान कर उसके सहारे से अपने इस दिव्य महेश्वरी स्वरूप का दर्शन कराया।। २२।।

शशिकोटिप्रभं चारुचन्द्रार्धकृतशेखरम्।
त्रिशूलवरहस्तं च जटामण्डितमस्तकम्॥ २३॥

जिससे करोड़ों चन्द्रमाओं की कान्ति निकल रही थी। जिसके मस्तक पर अर्धचन्द्र विराजमान था। हाथ में एक श्रेष्ठ त्रिशूल था, मस्तक पर जटाएँ शोभित हो रही थीं।। २३।।

भयानकं घोररूपं कालानलसहस्त्रभम्।
पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रं च नागयज्ञोपवीतिनम्॥ २४॥

वह रूप घोर और भयानक था; क्योंकि उससे हजारों कालाग्नियों की लपटें निकल रही थीं। उसके पाँच मुख और तीन नेत्र थे। उन्होंने लम्बे काले सर्प को यज्ञोपवीत की तरह धारण कर रखा था।। २४।।

द्वीपिचर्माम्बरधरं नागेन्द्रकृतभूषणम्।
एवं विलोक्य तद्रूपं विस्मितो हिमवान् पुनः।
प्रोवाच वचनं "माता रूपमन्यत् प्रदर्शय"॥ २५॥

उन्होंने चीते का चर्म वस्त्र के तथा और साँपों को आभूषण के रूप में धारण कर रखा था। उनका यह रूप देखकर विस्मित (भयचकित)

हुआ पर्वतराज हिमालय फिर बोला– "हे माता! अपना कोई अन्य रूप दिखाइये"?।। २५।।

भगवती का दूसरा रूप

ततः संहृत्य तद्रूपं दर्शयामास तत्क्षणात्।
रूपमन्यन्मुनिश्रेष्ठ! विश्वरूपा सनातनी॥ २६॥

हे मुनिश्रेष्ठ! तब भगवती ने अपना वह रूप छिपाकर उसी समय दूसरा रूप विस्वरूपा दिखाया।। २६।।

शरच्चन्द्रनिभं चारुमुकुटोज्ज्वलमस्तकम्॥ २७॥
शङ्खचक्रगदापद्महस्तं नेत्रत्रयोज्ज्वलम्।
दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगन्धानुलेपनम्॥ २८॥

वह रूप शरदृतु के चन्द्रमा के समान कान्तिमान् था। उनका मस्तक सुन्दर मुकटों से शोभित था। वह चारों हाथों में क्रमशः शङ्ख, चक्र, गदा एवं पद्म (कमलपुष्प) लिये हुई थी। वह तीन नेत्रों से भी शोभित थी। दिव्यमाला एवं वस्त्रधारण किये हुई थी। उसने अपने शरीर पर दिव्यगन्ध का लेप कर रखा था।। २७–२८।।

योगीन्द्रवृन्दसम्वन्द्यं सुचारुचरणाम्बुजम्।
सर्वतः पाणिपादं च सर्वतोक्षिशिरोमुखम्॥ २९॥

उनके सुन्दर चरणकमलों को योगियों का समूह नमन कर रहा था। उसके हाथ एव पैर सब तरफ थे। उसी तरह आँखें, शिर एवं मुख भी सब तरफ दिखायी दे रहे थे।। २९।।

दृष्ट्वा तदेतत् परमं रूपं स हिमवान् पुनः।
प्रणम्य तनयां प्राह विस्मयोत्फुल्ललोचनः॥ ३०॥

वे पर्वतराज हिमालय उस भगवती का यह रूप देखकर उन्हें प्रणाम कर आश्चर्यपूर्वक विस्तारित नेत्रों द्वारा अपनी पुत्री से यों बोले–।। ३०।।

भगवती का तीसरा रूप

***हिमालय०*—"मातस्तवेदं परमं रूपमैश्वरमुत्तमम्।**
विस्मितोऽस्मि समालोक्य रूपमन्यत् प्रदर्शय॥ ३१॥

हिमवान्– "हे माता! आप का यह ईश्वरीमयरूप और भी अधिक विस्मयकारी है। कृपया अपना और भी कोई रूप दिखाइये?।। ३१।।

त्वं यस्य सो ह्यशोच्यो हि धन्यश्च परमेश्वरि।
अनुगृह्णीष्व मातर्मां कृपया त्वां नमो नमः"॥ ३२॥

हे परमेश्वरि! आप का जिसने आश्रय ले लिया, उसके विषय में किसी अन्य को कोई चिन्ता नहीं करनी वह धन्य है। हे माता! कृपया मुझ पर अनुग्रह कीजिये। आपको मैं बार बार प्रणाम करता हूँ"।। ३२।।

***श्रीमहादेव०*— इत्युक्ता सा तदा पित्रा शैलराजेन पार्वती।**
तद्रूपमपि संहृत्य दिव्यं रूपं समादधे॥ ३३॥

श्रीमहादेव जी— इस प्रकार पिता हिमालय द्वारा प्रार्थित वह पार्वती अपने उस रूप को भी छिपाकर दिव्य रूप (विग्रह) में प्रकट हुईं।। ३३।।

नीलोत्पलदलश्यामं वनमालाविभूषितम्।
शङ्खचक्रगदापद्ममभिव्यक्तं चतुर्भुजम्॥ ३४॥

उस रूप में उनका शरीर नील कमल की तरह श्यामवर्ण था। वह वनमाला धारण किये हुए थी। उसके चारों हाथों में शङ्ख, चक्र, गदा एवं पद्म स्पष्टतः शोभित थे।। ३४।।

एवं विलोक्य तद्रूपं शैलानामधिपस्ततः।
कृताञ्जलिपुटः स्थित्वा हर्षेण महता युतः॥ ३५॥
स्तोत्रेणानेन तां देवीं तुष्टाव परमेश्वरीम्।
सर्वदेवमयीमाद्यां ब्रह्मविष्णुशिवात्मिकाम्॥ ३६॥

तब वे पर्वतराज भगवती का वह दिव्यरूप देखकर हाथ जोड़कर परम हर्ष के साथ उस भगवती परमेश्वरी को जो कि स्वयं ब्रह्मा विष्णु एवं शिव है, सर्वदेवमय है, आद्या प्रकृति है, इस अधोलिखित स्तोत्र से सन्तुष्ट करने लगा—।। ३५–३६।।

हिमालयकृत देवी-स्तुति

हिमालय०—

"मातः सर्वमयि प्रसीद परमे विश्वेशि विश्वाश्रये,
त्वं सर्वं नहि किञ्चिदस्ति भुवने तत्त्वं त्वदन्यच्छिवे!
त्वं विष्णुर्गिरिशस्त्वमेव नितरां धातासि शक्तिः परा,
किं वर्ण्यं चरितं त्वचिन्त्यचरिते ब्रह्माद्यगम्यं मया॥ ३७॥

हिमवान्— हे माता! आप मुझ पर प्रसन्न होइये। आप सकलरूपमयी हैं। आप परमा शक्ति हैं। विश्वेश्वरी हैं। विश्वाधार हैं। आप ही इस विश्व में सबकुछ (सारभूत) हैं। हे शिवे आपको छोड़कर यहाँ सब कुछ तुच्छ (निस्सार) है। आप ही विष्णु हैं, आप ही शिव हैं, आप ही ब्रह्मा हैं। आप ही पराशक्ति हैं।

हे अचिन्त्यचरिते! आपके चरित्र का वर्णन मैं कैसे करूँ! आपका चरित्रवर्णन तो ब्रह्मा आदि के द्वारा भी अज्ञेय है।। ३७।।

त्वं स्वाहाखिलदेवतृप्तिजननी विश्वेशि त्वं वै स्वधा,
पितृणामपि तृप्तिकारणमसि त्वं देवदेवात्मिका।
हव्यं कव्यमपि त्वमेव नियमो यज्ञस्तपो दक्षिणा,
त्वं स्वर्गादिफलं समस्तफलदे देवेशि तुभ्यं नमः॥ ३८॥

हे विश्वेश्वरि! आप स्वाहा के रूप में सभी देवताओं को तृप्त करने वाली और स्वधा के रूप में सभी पितरों की तृप्ति करने वाली हैं। आप ही हव्य (देवभोज्य) है, आप ही कव्य (पितृभोज्य), नियम, यज्ञ, तप एवं दक्षिणा (दान) हैं। आप ही स्वर्गादि का फल हैं। हे समस्त फलदात्रि! देवेश्वरि! आप को बार–बार प्रणाम है।। ३८।।

रूपं सूक्ष्मतमं परात् परतरं यद्योगिनो विद्यया
शुद्धं ब्रह्ममयं वदन्ति परमं मातः सुदृप्तं तव।
वाचा दुर्विषयं मनोऽतिगमपि त्रैलोक्यबीजं शिवे,
भक्त्याहं प्रणमामि देवि वरदे विश्वेश्वरि त्राहि माम्॥ ३९॥

हे माता! आपका रूप सूक्ष्मतम है, पर से परतर है, जिसे योगिजन विद्या (अपने अध्ययन) द्वारा परम शुद्ध सुप्रकाशित ब्रह्ममय बताते हैं। वह वाणी द्वारा अवर्णनीय है, मन से अतीव अगम्य (अबोध्य) है। वह त्रैलोक्य का मूलबीज है। हे शिवे! हे देवि! मैं आप को भक्तिपूर्वक प्रणाम करता हूँ। हे विश्वदेश्वरि वरदात्रि! आप मेरी रक्षा करें।। ३९।।

उद्यत्सूर्यसमप्रभां मम गृहे जातां स्वयं लीलया,
देवीमष्टभुजां विशालनयनां बालेन्दुमौलिं शिवाम्।
उद्यत्कोटिशशाङ्ककान्तिनयनां बालां त्रिनेत्रां परां,
भक्त्या त्वां प्रणमामि विश्वजननीं देवि प्रसीदाम्बिके!॥ ४०॥

आप मेरे घर में अपनी लीला प्रकट करने के लिये ही प्रादुर्भूत हुई हैं। आपके शरीर की शोभा उगते सूर्य की अरुण कान्ति के समान है। आप आठ भुजाओं वाली देवी हैं। आपके विशाल नेत्र हैं। आपके शिर पर बाल चन्द्र शोभित है। आप सबका कल्याण करने वाली हैं। आपके नेत्र उगते हुए करोंड़ों चन्द्रमा की कान्ति से युक्त हैं। आपके तीन नेत्र हैं। आप परा शक्ति हैं। आप जगन्माता को मैं भक्तिपूर्वक प्रणाम करता हूँ। हे देवि! हे माता! आप मुझ पर प्रसन्न हों।। ४०।।

रूपं ते रजताद्रिकान्तिविमलं नागेन्द्रभूषोज्ज्वलं,
घोरं पञ्चमुखाम्बुजत्रिनयनैर्भीमैः समुद्भासितम्।
चन्द्रार्धाङ्कितमस्तकं धृतजटाजूटं शरण्ये शिवे,
भक्त्याहं प्रणमामि विश्वजननिं त्वां त्वं प्रसीदाम्बिके॥ ४१॥

हे शरणदायिनि! आप का रूप रजतपर्वत के समान श्वेत कान्ति से युक्त है। सर्परूपी आभूषणों से अलङ्कृत है अतएव भयानक है। आप के पाँच मुखकमल तथा तीन भयङ्कर नेत्र हैं। आपका मस्तक अर्धचन्द्र से शोभित है। उस पर सुन्दर जटाजूट हैं। हे शिवे! हे जगन्माता! मैं आपको भक्तिपूर्वक प्रणाम करता हूँ हे माता! आप मुझ पर प्रसन्न हों।। ४१।।

रूपं शारदचन्द्रकोटिसदृशं दिव्याम्बरं शोभनं,
दिव्यैराभरणैर्विराजितमलं कान्त्या जगन्मोहनम्।
दिव्यैर्बाहुचतुष्टयैर्युतमहं वन्दे शिवे भक्तितः,
पादाब्जं जननि प्रसीद निखिलब्रह्मादिदेवस्तुते॥ ४२॥

हे शिवे! आप का रूप शरद् ऋतु के करोड़ों चन्द्रमा की तरह कान्तिमान् है। दिव्य वस्त्रों से युक्त तथा सुन्दर, दिव्य आभूषणों से अलङ्कृत एवं अत्यधिक कान्ति से युक्त है। वह जगत् का मोहक है। आप का विग्रह चार दिव्य भुजाओं से सम्पृक्त है। अतः मैं भक्तिपूर्वक आपके चरणकमलों में वन्दना करता हूँ। ब्रह्मा आदि सभी देव आपकी स्तुति करते हैं हे माता! आप प्रसन्न होइये।। ४२।।

रूपं ते नवनीरदद्युतिरुचि फुल्लाब्जनेत्रोज्ज्वलं,
कान्त्या विश्वविमोहनं स्मितमुखं रत्नाङ्गदैर्भूषितम्।
विभ्राजद्वनमालया विलसितोरस्कं जगत्तारिणि,
भक्त्याहं प्रणतोऽस्मि देवि कृपया दुर्गे प्रसीदाम्बिके!॥ ४३॥

हे जगत्तारिणि! आपका रूप नव मेघ की तरह आभायुक्त है, आपके नेत्र खिले कमल पुष्प की तरह हैं। यह रूप कान्ति से जगत् को मोहने वाला है, आप के मुख पर मन्द हास्य झलक रहा है। रत्नजटित बाजूबन्द आभूषणों से युक्त हैं। आपका वक्षःस्थल सुन्दर वनमाला से शोभित है। हे दुर्गे! मैं आपके प्रति भक्तिपूर्वक नतमस्तक हूँ। हे माता! आप कृपा कर मुझ पर प्रसन्न हों।। ४३।।

मातः कः परिवर्णितुं तव गुणं रूपं च विश्वात्मकं
शक्तो देवि जगत्त्रये बहुगुणैर्देवोऽथवा मानुषः।

तत् किं स्वल्पमतिर्ब्रवीमि करुणां कृत्वा स्वकीयैर्गुणै-
र्नो मां मोहय मायया परमया विश्वेशि तुभ्यं नमः ॥ ४४ ॥

हे माता! इस संसार में कौन देवता या मनुष्य आप के इस विश्वमय रूप तथा गुणों का वर्णन करने में समर्थ है तब फिर मैं अल्पबुद्धि क्या वर्णन कर सकता हूँ। अतः आप कृपाकर अपने गुणों से तथा अपनी बलवती माया से मुझे सम्मुग्ध न करें। हे विश्वेश्वरि! मैं आपको प्रणाम करता हूँ।। ४४ ।।

अद्य मे सफलं जन्म तपश्च सफलं मम।
यत्त्वं त्रिजगतां माता मत्पुत्रीत्वमुपागता ॥ ४५ ॥

हे देवि! आज मेरा जन्म तथा समग्र तप सफल हो गया कि आप जगज्जननी मेरे घर में मेरी पुत्री के रूप में प्रादुर्भूत हुईं।। ४५ ।।

धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं मातस्त्वं निजलीलया।
नित्यापि मद्गृहे जाता पुत्रीभावेन वै यतः ॥ ४६ ॥

मैं धन्य हूँ, मेरे सभी कार्य पूर्ण हो गये, क्योंकि हे माता! आप नित्य होते हुए भी मेरे घर में पुत्रीरूप से प्रादुर्भूत हुईं।। ४६ ।।

किं ब्रुवे मेनकायाश्च भाग्यं जन्मशतार्जितम्।
यतस्त्रिजगतां मातुरपि माता भवेत्तव" ॥ ४७ ॥

मैं अपनी पत्नी मेनका के अनेक जन्मों से अर्जित भाग्य की क्या सराहना करूँ कि वह आज तीनों लोकों की माता की भी माता बन गयी!' ।। ४७ ।।

श्रीमहादेव०—**एवं गिरीन्द्रतनया गिरिराजेन संस्तुता।**
बभूव सहसा चारुरूपिणी पूर्ववन्मुने ॥ ४८ ॥

श्रीमहादेव जी— हे मुने! यों वह पार्वती, गिरिराज द्वारा स्तुति किये जाने के बाद, पुनः सहसा सुन्दर आकृतिवाली बन गयीं।। ४८ ।।

मेनकापि विलोक्यैवं विस्मिता भक्तिसंयुता।
ज्ञात्वा ब्रह्ममयीं पुत्रीं प्राह गद्गदया गिरा ॥ ४९ ॥

मेनका ने भी उसका यह सुन्दर रूप देखकर आश्चर्यचकित हो, उसे अपनी ब्रह्ममयी पुत्री जानकर, उससे भक्तिपूर्वक गद्गद वाणी से यों कहा— ।। ४९ ।।

मेनका०— **"मातः स्तुतिं न जानामि भक्तिं वा जगदम्बिके!**
तथाप्यहमनुग्राह्या त्वया निजगुणेन हि ॥ ५० ॥

मेनका— "हे जगन्माता! मैं स्त्रीजाति में उत्पन्न न तो कोई भक्ति का विधान जानती हूँ, न स्तुति आदि का। तो भी हे माता! आप मुझ पर अपने गुणों के प्रभाव से अनुग्रह कीजिये।। ५०।।

त्वया जगदिदं सृष्टं त्वमेवैतत्फलप्रदा।
सर्वाधारस्वरूपा च सर्वं व्याप्याधितिष्ठसि"॥ ५१॥

आपने ही इस समस्त जगत् की सृष्टि की है। आप ही इसके कर्मफल की प्रदाता हैं। आप सभी की आधारभूत हैं तथा आप सब में व्याप्त होकर विराजमान हैं।। ५१।।

श्रीदेवी०— **"त्वया मातस्तथा पित्राप्यनेनाराधिता ह्यहम्।**
महोग्रतपसा पुत्रीं लब्धुं मां परमेश्वरीम्॥ ५२॥

श्रीदेवी— "हे माता! आपने तथा मेरे इन पिता ने उग्र तपस्या द्वारा मेरी आराधना कर मुझ अविनाशी को भी अपनी पुत्री के रूप में प्राप्त कर लिया।। ५२।।

युवयोस्तपसस्तस्य फलदानाय लीलया।
नित्या लब्धवती जन्म गर्भे तव हिमालयात्"॥ ५३॥

आपके उस अपूर्व तप का फल प्रदान करने के लिये अपनी लीला से, नित्य होती हुई भी मैंने हिमालय के माध्यम से आपकी कोंख में आकर जन्म लिया"।। ५३।।

श्रीमहादेव०—**ततो गिरीन्द्रस्तां देवीं प्रणिपत्य पुनः पुनः।**
पप्रच्छ ब्रह्मविज्ञानं प्राञ्जलिर्मुनिसत्तम!॥ ५४॥

श्रीमहादेव जी— हे मुनिश्रेष्ठ ! तब पर्वतराज ने उस देवी को बारबार प्रणाम कर, हाथ जोड़कर ब्रह्मविज्ञान के विषय में प्रश्न किया।। ५४।।

हिमालय०— **मातस्त्वं बहुभाग्येन मम जातासि कन्यका।**
ब्रह्माद्यैर्दुर्लभा योगिदुर्गमया निजलीलया॥ ५५॥

हिमालय— "आप मेरे सौभाग्य से मेरी कन्या के रूप में मेरे घर पधारी हैं। आप की लीलाएँ ब्रह्मा आदि देवों द्वारा भी कठिनता से समझी जाती हैं तथा योगिजन भी आप को कठिनता से ही जान पाते हैं।। ५५।।

अहं तव पदाम्भोजं प्रपन्नोऽस्मि महेश्वरि!
यथाञ्जसा तरिष्यामि संसारापारवारिधिम्॥ ५६॥

हे महेश्वरि! मैं आपके चरणकमलों में बार-बार प्रणाम करता हूँ। जिससे कि सरलता से ही मैं इस भवसागर को पार कर जाऊँगा।। ५६।।

यस्मात् कालस्य कालस्त्वं महाकालीति गीयसे।
तस्मात्त्वं शाधि मातर्मा ब्रह्मविज्ञानमुत्तमम्॥ ५७॥

क्योंकि आप मृत्यु की भी मृत्यु बनकर 'महाकाली' कहलाती हैं, अतः, हे माता! आप मुझे उत्तम ब्रह्मविज्ञान के विषय में कुछ बताइये।। ५७।।

श्रीपार्वतीगीता—**शृणु तात प्रवक्ष्यामि योगसारं महामते!।**
यस्य विज्ञानमात्रेण देही ब्रह्ममयो भवेत्॥ ५८॥

पार्वती— हे तात! हे महामते! मैं तुम्हें योग का वह तत्त्व समझाऊँगी, जिसके जानने मात्र से प्राणी ब्रह्मरूप हो जाता है।। ५८।।

गृहीत्वा मम मन्त्रान्वै सद्गुरोः सुसमाहितः।
कायेन मनसा वाचा मामेव हि समाश्रयेत्॥ ५९॥

साधक किसी सद्गुरु से मेरी आराधना का मन्त्र जानकर अपना चित्त समाहित कर शरीर, मन और वाणी से मेरा ही आश्रय ग्रहण करे।। ५९।।

मच्चित्तो मद्गतप्राणो मन्नामजपतत्परः।
मत्प्रसङ्गो मदालापो मद्गुणश्रवणे रतः॥ ६०॥

वह मुझमें अपने चित्त तथा प्राण लगा दे। मेरे नाम के कीर्तन में संलग्न हो जाय। दिन रात मेरे ही विषय में चर्चा करता रहे। मेरे ही विषय में बातचीत करे और मेरे ही गुणों के श्रवण में निरन्तर लगा रहे।। ६०।।

भवेन्मुमुक्षू राजेन्द्र मयि भक्तिपरायणः।
मदर्चाप्रीतिसंसक्तमानसः साधकोत्तमः॥ ६१॥

हे राजेन्द्र! किसी भी उत्तम मुमुक्षु साधक को मेरी ही भक्ति में लग जाना चाहिये। मेरी पूजा, मेरी प्रीति में ही अपने चित्त को लगाये रखना चाहिये।। ६१।।

पूजायज्ञादिकं कुर्याद् यथाविधिविधानतः।
श्रुतिस्मृत्युदितैः सम्यक् स्ववर्णाश्रमवर्णितैः॥ ६२॥

वह शास्त्रानुमोदित विधि-विधान से मेरी पूजा तथा यज्ञादिक करें; जो श्रुति, स्मृति में स्ववर्णाश्रम धर्म के लिये उचित बता रखा हो।। ६२।।

सर्वयज्ञतपोदानैर्मामेव हि समर्चयेत्।
ज्ञानात् सञ्जायते मुक्तिर्भक्तिर्ज्ञानस्य कारणम्॥ ६३॥

सभी यज्ञ, तप तथा दान कर्मों से मेरी ही पूजा अर्चना करे; क्योंकि ज्ञान से मुक्ति होती है तथा इस ज्ञान में भक्ति कारण होती है।। ६३।।

धर्मात् सञ्जायते भक्तिर्धर्मो यज्ञादिको मतः।
तस्मान्मुमुक्षुर्धर्मार्थं ममेदं रूपमाश्रयेत्॥ ६४॥

धर्माचरण से भक्ति प्राप्त होती है। यज्ञादिक से धर्म प्राप्त किया जा सकता है। अतः किसी भी मुमुक्षु साधक को धर्मप्राप्ति के लिये मेरे इस रूप का आलम्बन ग्रहण करना चाहिये।। ६४।।

सर्वाकाराहमेवैका सच्चिदानन्दविग्रहा।
मदंशेन परिच्छिन्ना देहाः स्वर्गौकसां पितः॥ ६५॥

हे पिता! मैं ही सर्वाकार हूँ। मैं सत् चित् आनन्द विग्रहवाली हूँ। सभी देवताओं के देह मेरे ही अंश से युक्त हैं।। ६५।।

तस्मान्मामेव विध्युक्तैः सकलैरेव कर्मभिः।
विभाव्य प्रजपेद्भक्त्या नान्यथा भावयेत् सुधीः॥ ६६॥

अतः बुद्धिमान् पुरुष शास्त्रविधि के कथित सभी कर्मों से, विचारपूर्वक, मेरी ही भक्ति करें, अन्यथा नहीं।। ६६।।

एवं वियुक्तकर्माणि कृत्वा निर्मलमानसः।
आत्मज्ञानसमुद्युक्तो मुमुक्षुः सततं भवेत्॥ ६७॥

निर्मलचित्त तथा आत्मज्ञान प्राप्ति में लगा हुआ मोक्ष का इच्छुक साधक शास्त्रविधि से कहे हुए ऐसे कर्मों को निरन्तर करता रहे।। ६७।।

घृणां वितत्य सर्वत्र पुत्रमित्रादिकेष्वपि।
वेदान्तादिषु शास्त्रेषु सन्निविष्टमना भवेत्॥ ६८॥
कामादिकं त्यजेत् सर्वं हिंसां चापि विवर्जयेत्।
एवं कृत्वा परां विद्यां जानीते नात्र संशयः॥ ६९॥

सर्वत्र पुत्र–मित्रादि में उपेक्षा (अनासक्ति) दिखाता हुआ तथा वेदान्तादि शास्त्रों के स्वाध्याय में ध्यान लगाकर। सभी कामभोगादि विकारों का तथा हिंसा का परित्याग कर दे। ऐसा करके ही वह मुमुक्षु परा विद्या का अधिग्रहण कर पायगा— इसमें कोई संशय नहीं है।। ६८–६९।।

यदैवात्मा महाराज! प्रत्यक्षमनुभूयते।
तदैव जायते मुक्तिः सत्यं सत्यं ब्रवीमि ते॥ ७०॥

हे महाराज! मैं आप को सत्य (सारभूत) बात बता दूँ कि जब आत्मा का प्रत्यक्ष ज्ञान हो जाता है तभी 'मुक्ति' कहलाती है।। ७०।।

किं त्वेतद् दुर्लभं तात मद्भक्तिविमुखात्मनाम्।
तस्माद्भक्तिः परा कार्या मयि यत्नान्मुमुक्षुभिः ॥ ७१ ॥

परन्तु हे तात! यह (मुक्ति) मेरी भक्ति से विमुख (दूर) लोगों के लिये दुर्लभ ही है। अतः मुमुक्षुजनों को यत्नपूर्वक मेरी भक्ति मे मन लगाना चाहिये।। ७१।।

त्वमप्येवं महाराज! मयोक्तं कुरु सर्वदा।
संसारदुःखैरखिलैर्बाध्यसे न कदाचन"॥ ७२॥

श्रीमहाभागवते उपपुराणे विज्ञानयोगोपदेशवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५॥

हे महाराज! यदि आप भी मेरे द्वारा बतायी गयी इस विधि से आचरण करें तो सभी सांसारिक दुःखों से मुक्ति प्राप्त कर लें तथा ये दुःख आप को कभी बाधा नही पहुँचायें।। ७२।।

श्रीमहाभागवत उपपुराण में
'विज्ञानयोगोपदेशवर्णन' नामक
पञ्चदश अध्याय समाप्त॥

सोलहवाँ अध्याय

[ब्रह्मविद्योपदेशवर्णन]

हिमालय०— "विद्या वा कीदृशी मातर्यतो मुक्तिः प्रजायते।
आत्मा वा किंस्वरूपश्च तन्मे ब्रूहि महेश्वरि?" ॥ १ ॥

हिमवान्— "हे माता! वह विद्या कौन सी है जिससे मुक्ति अधिगत की जा सकती है? और आत्मा का क्या स्वरूप है? ये दोनों बातें मुझको स्पष्टतः समझाइये?" ।। १ ।।

श्रीपार्वती०— "शृणु तात प्रवक्ष्यामि या संसारनिवर्तिका।
विद्या तस्याः स्वरूपं हि संक्षेपेण महामते! ॥ २ ॥

श्रीपार्वती— "हे तात! मैं तुम्हें अब उस विद्या के विषय में बताऊँगी जो संसारसागर से मुक्ति दिलाने वाली है, हे महामते! मैं तुम्हें उसका स्वरूप भी संक्षेप से बताऊँगी ।। २ ।।

बुद्धिप्राणमनोदेहाहंकृतीन्द्रियतः पृथक्।
अद्वितीयश्चिदात्माहं शुद्ध एवेति निश्चितम् ॥ ३ ॥

बुद्धि, प्राण, देह, अहङ्कार तथा पाँचों इन्द्रियों से पृथक् रहने वाला, अहम्बुद्धिरूप चिदात्मा पूर्णतः शुद्ध (विकाररहित) है— यह बात सुनिश्चित है ।। ३ ।।

संवेत्ति येन ज्ञानेन विद्या तद्ध्यानमुच्यते ॥ ४ ॥

जिस ज्ञान से विद्या जानी जाती है उसे 'ध्यान' कहते हैं ।। ४ ।।

आत्मा निरामयः शुद्धो जन्मनाशादिवर्जितः।
बुद्ध्याद्युपाधिरहितश्चिदानन्दात्मको मतः।
आनन्दः सुप्रभः पूर्णः सत्यज्ञानादिलक्षणः ॥ ५ ॥

आत्मा निर्विकार है, शुद्ध है, जन्म तथा क्षय आदि से दूर है। वह बुद्धि आदि उपाधियों से रहित है, चिदानन्दस्वरूप है, आनन्दमय है, प्रभायुक्त है, पूर्ण है, सत्य ज्ञान आदि चिह्नों से युक्त है ।। ५ ।।

एक एवाद्वितीयश्च सर्वदेहगतः परः।
स्वप्रकाशेन देहादीन् भासयन् सुसमास्थितः ॥ ६ ॥

वह एक ही है, अद्वितीय है, सभी देहों में व्याप्त है, पर है, देहादियों को अपने प्रकाश से उद्भासित करता रहता है।। ६।।

इत्यात्मनः स्वरूपं ते गिरिराज मयोदितम्।
एवं विचिन्तयेन्नित्यमात्मानं सुसमाहितः॥ ७॥

यों, हे गिरिराज! यही आत्मा का स्वरूप है जो मैंने तुमको बता दिया! मुमुक्षु को आत्मा के विषय में इन्हीं लक्षणों से विचार करना चाहिये।। ७।।

अनात्मनि शरीरादावात्मबुद्धिं विवर्जयेत्।
रागद्वेषादिदोषेभ्यो हेतुभूता हि सा यतः॥ ८॥

अनात्मभूत शरीर आदि में आत्मबुद्धि का त्याग कर देना चाहिये; क्योंकि ऐसी बुद्धि (विचार) राग, द्वेष आदि विकारों की हेतु है।। ८।।

रागद्वेषादिदोषेभ्यः सदोषं कर्म सम्भवेत्।
ततः पुनः संसृतिश्च तस्मात्तां परिवर्जयेत्"॥ ९॥

क्योंकि रागद्वेष आदि के कारण सदोष कर्मों की उत्पत्ति सम्भव है, इनसे आगे संसार का क्रम पुनः चल पड़ता है; अतः उसका परित्याग करना आवश्यक है"।। ९।।

हिमालय— **"अशुभादृष्टजनका रागद्वेषादयः शिवे!।**
कथं जनैः परित्याज्यास्तन्मे त्वं वक्तुमर्हसि॥ १०॥

हे शिवे! अशुभ अदृष्ट के उत्पादक ये राग द्वेष आदि मनुष्यों द्वारा कैसे छोड़े जायँ?— यह आप मुझे बताइये।। १०।।

कुर्वन्ति येऽपकाराणि कथं तान् सहते जनः।
तेषु रागश्च विद्वेषः कथं वा न भवेत्तयोः"॥ ११॥

विकारों से युक्त होकर जिस प्रकार मनुष्य दूसरे मनुष्य का अहित करते हैं, उन्हें दूसरे मनुष्य कैसे सह लेते हैं? उनका इन विकारों में राग या विद्वेष किस प्रकार नहीं होता? यह भी बताइये।। ११।।

पार्वती— **"अपकारः कृतः कस्य तदेवाशु विचारयेत्।**
विचार्यमाणे तस्मिंश्च द्वेष एव न जायते॥ १२॥

श्रीपार्वती— "हमने किसका अपकार किया है? इसी पर तत्काल विचार करना चाहिये। ऐसा विचार करने पर उसमें द्वेष नहीं हो पाता।। १२।।

पञ्चभूतात्मको देहो मुक्तो जीवो यतः स्वयम्।
वह्निना दह्यते वापि शिवाद्यैर्भक्षितोऽपि वा॥ १३॥

यह देह तो पञ्चभूतात्मक है। आत्मा इनसे अतिरिक्त है। वह देह या तो अग्नि द्वारा दग्ध हो जाता है या उसे गीदड़ आदि पशु खा जाते हैं।। १३।।

तथापि यो विजानाति कोऽपकारोऽस्ति तस्य वै।
आत्मा शुद्धः स्वयम्पूर्णः सच्चिदानन्दविग्रहः॥ १४॥

तो भी इस बात को जो जानता है, उसका अपकार क्या होगा! क्योंकि आत्मा तो शुद्ध है, स्वयं में पूर्ण है तथा सत् चित् आनन्द विग्रह वाला होता है।। १४।।

न जायते न म्रियते निर्लेपो न च दुःखभाक्।
विच्छिद्यमाने देहेऽपि नापकारोऽस्य जायते॥ १५॥

वह (आत्मा) न पैदा होता है, न मरता है। वह तो निर्लेप है। न उसे कोई दुःख होता है न सुख। यहाँ तक कि इस देह के नष्ट हो जाने पर भी उसका कोई अपकार नहीं होता।। १५।।

यथा गेहान्तरस्थस्य नभसः क्वापि लक्ष्यते।
गृहेषु दह्यमानेषु गिरिराज! तथैव हि॥ १६॥
हन्ता चेन्मन्यते हन्तुं हतश्चेन्मन्यते हतः।
तावुभौ भ्रान्तहृदयौ नायं हन्ति न हन्यते॥ १७॥

हे गिरिराज! जैसे घर के जल जाने पर उसके अन्तःपाती आकाश का दाह नहीं होता, उसी तरह मारने वाला यदि यह सोचता है कि मैंने इसको मार दिया, या फिर मरने वाला सोचे कि मुझको इसने मारा तो ये दोनों ही भ्रान्त हैं। वस्तुतः न कोई मरता है, न मारता है।। १७।।

स्वस्वरूपं विदित्वैवं द्वेषं त्यक्त्वा सुखी भवेत्।
द्वेषमूलो मनस्तापो द्वेषः संसारकारणम्॥ १८॥
मोक्षविघ्नकरो द्वेषस्तं यत्नात् परिवर्जयेत्''॥ १९॥

इस तरह साधक अपनी वास्तविकता पहचान कर सांसारिक द्वेष को त्यागकर सुखी रहता है। यहाँ तक यह द्वेष ही मोक्ष में विघ्नकारक है। अतः मुमुक्षु को यत्नपूर्वक इसका परित्याग करना चाहिये''।। १८–१९।।

हिमालय०— **''देहस्यापि न चेद् देवि न जीवस्य परात्मनः।**
नापकारोऽत्र विद्येत नैतौ दुःखस्य भागिनौ।
तत्कस्य जायते दुःखं यत्साक्षादनुभूयते?॥ २०॥

हिमवान्— ''हे देवि! यदि देह या परात्मा जीव— दोनों को ही यह

अपकार नहीं लगता, तो ये दोनों दुःख के भागी नहीं हुए, फिर इस दुःख का भोक्ता कौन है? जब कि हमें व्यवहार में इसका प्रत्यक्ष अनुभव होता है।। २०।।

अन्यो वा कोऽस्ति देहेऽस्मिन् दुःखभोक्ता महेश्वरि!।
एतन्मे ब्रूहि तत्त्वेन मयि ते यद्यनुग्रहः"॥ २१॥

हे महेश्वरि! क्या इन दोनों के अतिरिक्त इस देह में कोई अन्य है, जो इस दुःख का भोक्ता है? यदि आप का मुझ पर अनुग्रह है तो इस बात को मुझे आप स्पष्ट बताइये।। २१।।

श्रीपार्वती— **"नैव दुःखं हि देहस्य नात्मनोऽपि परात्मनः।**
तथापि जीवो निर्लेपो मोहितो मम मायया॥ २२॥
सुख्यहं दुःख्यहं चैव स्वयमेवाभिमन्यते।
अनाद्यविद्या सा माया जगन्मोहनकारिणी॥ २३॥

पार्वती— "वस्तुतः यह दुःख न तो देह को होता है, न परात्मा को ही। परन्तु यह जीव निर्लेप होता हुआ भी मेरी माया से मुग्ध होकर, 'मैं सुखी हूँ', 'मैं दुःखी हूँ'— ऐसा स्वयं ही अभिमान करता है। यह मायारूप अविद्या अनादिकाल से जगत् को मुग्ध करती आ रही है।। २२–२३।।

जातमात्रं हि सम्बद्धस्तया सञ्जायते पितः!
संसारी जायते तेन रागद्वेषादिसंकुलः॥ २४॥

हे पिताजी! यह प्राणी संसार में जन्म लेते ही उस माया से सम्पृक्त हो जाता है और उसे, उसी माया के माध्यम से, राग द्वेष आदि सताने लगते हैं।। २४।।

आत्मा स्वलिङ्गं तु मनः परिगृह्य महामते!
निलीना वासना यत्र संसारे वर्ततेऽवशः॥ २५॥

हे महामते! यह आत्मा स्वकीय लिङ्गभूत मन को ग्रहण कर लेता है, जहाँ रहती हुई वासना प्राणी को संसार में विवश होकर घुमाती रहती है।। २५।।

विशुद्धः स्फटिको यद्वद्रक्तपुष्पसमीपतः।
तत्तद्वर्णयुतो भाति वस्तुतो नास्ति रञ्जनम्।
बुद्धीन्द्रियादिसामीप्यादात्मनोऽपि तथा गतिः॥ २६॥

(इसी बात को एक उदाहरण से यों समझिये—) जैसे स्फटिक विशुद्ध (स्वच्छ=श्वेत) होता है, परन्तु वही किसी रक्त पुष्प के पास रख दिया

जाय तो वह रक्त वर्ण का दिखायी देने लगता है। वस्तुतः राग नाम की कोई चीज वहाँ नहीं है। बुद्धि, इन्द्रिय आदि की समीपता से आत्मा की भी यही स्थिति हो जाती है।। २६।।

मनो बुद्धिरहङ्कारो जीवस्य सहकारिणः।
स्वकर्मवशतस्तात! फलभोक्तार एव ते॥ २७॥

इस कार्य में देह में रहने वाले मन, बुद्धि एवं अहङ्कार इस जीव के सहकारी हैं।। २७।।

सर्वं वैषयिकं तात! सुखं वा दुःखमेव वा।
त एव भुञ्जते, नात्मा निर्लेपः प्रभुरव्ययः॥ २८॥
सृष्टिकाले पुनः पूर्ववासनावासितैः सह।
जायते जीव एवं हि वसत्याभूतसम्प्लवम्॥ २९॥

हे तात! स्वकर्मवश ये ही सब फल के भोक्ता बनते हैं। हे तात! यहाँ सभी सुख या दुःख विषय से सम्बद्ध हैं। वे देह आदि ही कृतकर्म का फल भोगते हैं; आत्मा नहीं; क्योंकि आत्मा तो निर्लेप, अविनाशी एवं स्वतन्त्र है। सृष्टिकाल में वह पुनः पूर्वजन्म की वासनाओं से सम्पृक्त होकर ये देहादि जन्म लेते हैं। जीव उनमें अन्ततक रहता है। यों समग्र प्राणियों में यह कर्म का चक्र चलता रहता है।। २८–२९।।

ततो ज्ञानविचारेण त्यक्त्वा मोहं विचक्षणः।
सुखी भवेन्महाराज! इष्टानिष्टोपपत्तिषु॥ ३०॥
देहमूलो मनस्तापो देहः संसारकारणम्।
देहः कर्मसमुत्पन्नः कर्म च द्विविधं मतम्॥ ३१॥
पापं पुण्यं च राजेन्द्र! तयोरंशानुसारतः।
देहिनः सुखदुःखं स्यादलङ्घ्यं दिनरात्रिवत्॥ ३२॥

अतः, इस ज्ञानविचार द्वारा बुद्धिमान् प्राणी को संसार का मोह त्याग देना चाहिये। हे महाराज! इष्ट अनिष्ट—दोनों ही स्थितियाँ आने पर मनुष्य को सुखी रहना चाहिये; क्योंकि यह मनस्ताप देह तक सीमित है और यह देह ही संसार (जन्म–मरण) का कारण है। हे राजेन्द्र! प्राणियों का देह कर्म से उत्पन्न होता है और यह कर्म पाप और पुण्य भेद से दो प्रकार का है। इन दोनों (पाप–पुण्यों) के भाग के अनुसार देही को सुख–दुःख होते रहते हैं। ये दिन एवं रात्रि की तरह निरन्तर आते रहते हैं।। ३०–३२।।

स्वर्गादिकामः कृत्वापि पुण्यं कर्म विधानतः।
प्राप्य स्वर्गं पतत्याशु भूयः कर्म प्रचोदितम्॥ ३३॥

इनमें, स्वर्गादि की कामना करता हुआ साधक विधिपूर्वक पुण्यकर्म कर स्वर्ग को प्राप्त करके, उस कर्मफल के क्षीण होने पर वह स्वर्ग से च्युत हो जाता है।। ३३।।

तस्मात् सत्संयमं कृत्वा विद्याभ्यासपरायणः।
विमुक्तसङ्गः परमं सुखमिच्छेद्विचक्षणः''॥ ३४॥

श्रीमहाभागवते उपपुराणे ब्रह्मविद्योपदेशवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः॥ १६॥

अतः बुद्धिमान् पुरुष को संयमपूर्वक, विद्याभ्यास करते हुए, सङ्ग (वासना) त्यागकर परमसुख (मोक्ष) की ही इच्छा करनी चाहिये''।। ३४।।

श्रीमहाभागवत उपपुराण में
'ब्रह्मविद्योपदेशवर्णन' नामक
सोलहवाँ अध्याय समाप्त॥

सत्तरहवाँ अध्याय

[ब्रह्मयोगोपदेशवर्णन]

हिमालय०— "दुःखस्य कारणं देहः पञ्चभूतात्मकः शिवे!
यतस्तद्विरहाद्देही न दुःखैः परिभूयते॥ १॥
सोऽयं सञ्जायते मातः कथं देहो महेश्वरि!
तं प्राप्य सुकृतान् कामान् कृत्वा स्वर्गमवाप्स्यति॥ २॥

हिमालय— "हे शिवे! यदि दुःख का कारण यह पञ्चभूतात्मक देह है; अतः यह देही (आत्मा) उस देह के न रहने पर किसी प्रकार के दुःखों से त्रस्त नहीं होता। हे माता महेश्वरि! इस देह की रचना कैसे होती है कि जिसको प्राप्त कर सुकृत कर्म करता हुआ देही स्वर्ग प्राप्त करता है?।। १–२।।

क्षीणपुण्यः कथं जीवो जायते च पुनर्भुवि।
तद् ब्रूहि विस्तरेणाशु यदि ते मय्यनुग्रहः"॥ ३॥

फिर पुण्यों के क्षीण होने पर वह जीव पुनः मर्त्यलोक में आकर क्यों कैसे जन्म लेता है?— यह सब मुझे विस्तार से बताइये? यदि आप का मुझ पर अनुग्रह है"।। ३।।

पाञ्चभौतिक देह

श्रीपार्वती०— "क्षितिर्जलं तथा तेजो वायुराकाश एव च।
एतैः पञ्चभिराबद्धो देहोऽयं पाञ्चभौतिकः॥ ४॥
प्रधानं पृथिवी तत्र शेषाणां सहकारिता।
उक्तश्चतुर्विधः सोऽयं गिरिराज निबोध मे॥ ५॥

श्रीपार्वती— "पृथ्वी, जल, तेज, वायु तथा आकाश— इन पाँचों भूतों से बन्धा हुआ यह देह "पाञ्चभौतिक' कहलाता है।। ४।।

इनमें पृथ्वी प्रधान है, अवशिष्ट चार भूत उसके सहकारी हैं। हे गिरिराज! यह देह चार प्रकार का कहलाता है, उसे मुझ से सुनो!।। ५।।

देह के चार भेद

अण्डजाः स्वेदजाश्चैवोद्भिज्जाश्चैव जरायुजाः।
अण्डजाः पक्षिसर्पाद्याः स्वेदजा मशकादयः॥ ६॥

१. अण्डज, २. स्वेदज, ३. उद्भिज्ज एवं ४. जरायुज! इनमें 'अण्डज' देह पक्षी एवं सर्प आदि कहलाते हैं। 'स्वेदज' मच्छर आदि कहलाते हैं।। ६।।

वृक्षगुल्मप्रभृतयश्चोद्भिज्जा हि विचेतनाः।
जरायुजा महाराज मानुषाः पशवस्तथा॥ ७॥

वृक्ष, झाड़ी आदि 'उद्भिज्ज' कहलाते हैं जो अचेतन होते हैं। और महाराज! मनुष्य एवं पशु 'जरायुज' कहलाते हैं।। ७।।

शुक्रशोणितसम्भूतो देहो ज्ञेयो जरायुजः।
भूयः स त्रिविधो ज्ञेयः पुंस्त्रीक्लीबविभेदतः॥ ८॥

वीर्य एवं रक्त से उद्भूत देह 'जरायुज' कहलाता है। फिर यही देह स्त्री, पुरुष एवं नपुंसक भेद से भी त्रिविध कहलाता है।। ८।।

देह के तीन भेद

शुक्राधिक्येन पुरुषो भवेत् पृथ्वीधराधिप!
रक्ताधिक्ये भवेन्नारी तयोः साम्ये नपुंसकम्॥ ९॥

हे पर्वतराज! यह शुक्र की अधिकता से 'पुरुष' कहलाता है, रक्त की अधिकता से 'स्त्री' तथा इन दोनों (रक्त एवं वीर्य) की समानता से 'नपुंसक' कहलाता है।। ९।।

देहोत्पत्तिक्रम

स्कर्मवशतो जीवो नीहारकलया युतः।
पतित्वा धरणीपृष्ठे व्रीहिमध्यगतो भवेत्॥ १०॥

स्वकर्म के वशीभूत यह जीव निष्कासन-पद्धति से इस भूतल पर आकर व्रीहि (धान=खाद्य) के मध्य पहुँचता है।। १०।।

स्थित्वा तत्र चिरं भुक्त्वा भुज्यते पुरुषैस्ततः।
ततः प्रविष्टं तद् गुह्यं पुंसो देहे प्रजायते।
रेतस्तेन स जीवोऽपि भवेद्रेतोगतस्तदा॥ ११॥

ततः स्त्रियाऽभियोगेन ऋतुकाले महामते!।
रेतसा सहितः सोऽपि मातृगर्भं प्रयाति हि॥ १२॥

वहाँ चिर काल तक ठहर कर वह मनुष्यों द्वारा खाया जाता है, वह वहाँ पुरुष की देह में कुछ समय गुप्त रहता है। फिर वहाँ वह वीर्य बन जाता है। महामते! उससे वह जीव भी उस वीर्य के साथ मिल जाता है। तब

ऋतुकाल में पुरुष का स्त्री से संयोग होने पर वीर्य के साथ वह जीव भी माता के गर्भ में चला जाता है।।। ११–१२।।

ऋतुस्नाता भवेन्नारी चतुर्थेऽहनि तद्दिनात्।
आषोडशदिनाद्राजन् ऋतुकाल उदाहृतः॥ १३॥
अयुग्मदिवसे नारी जायते पर्वतर्षभ!॥ १४॥
जायते च पुमांस्तत्र युग्मके दिवसे पितः॥ १५॥

ऋतुकाल— जब माता चौथे दिन ऋतुस्नान करती है उस दिन से सोलहवें दिन तक का समय हे राजन! 'ऋतुकाल' कहलाता है। इसमें १–५–७ आदि अयुग्म दिनों में गर्भ ठहरने पर नारी का जन्म होता है, तथा हे पिता! २, ४, ६ आदि युगल दिनों में गर्भ ठहरने पर 'पुरुष' की उत्पत्ति होती है।। १३–१५।।

ऋतुस्नाता तु कामार्ता मुखं यस्य समीक्षते।
तदाकृतिः सन्ततिः स्यात्तत्पश्येद्भर्तुराननम्॥ १६॥
तद्रेतो योनिरक्तेन युक्तं भूत्वा महामते।
दिनेनैकेन कललं जरायुपरिवेष्टितम्।
भूत्वा पञ्चदिनैरेव बुद्बुदाकारतामियात्॥ १७॥

ऋतुस्नान के बाद कामार्ता नारी जिस पुरुष का मुख सर्वप्रथम देखती है। उसी की आकृति के समान उसके सन्तान उत्पन्न होती है। अतः पतिव्रता नारी को ऐसे समय में अपने पति का ही मुख देखना चाहिये। हे महामति! (पति) का वीर्य नारी के रक्त (रज) से मिलकर एक ही दिन में कलल (गर्भ) रूप में जरायु के वेष्टित हो जाता है। और आगे पाँच दिन बाद ही वह बुलबुले की आकृति धारण कर लेता है।। १६–१७।।

या तु चर्माकृतिः सूक्ष्मा जरायुः सा निगद्यते।
शुक्रशोणितयोर्योगस्तस्मिन् सञ्जायते यतः॥ १८॥

उसके ऊपर जो पतली चर्म (झिल्ली) वेष्टित हो जाती है वही 'जरायु' कहलाती है; क्योंकि उसमें शुक्र एवं रज का योग हो जाता है।। १८।।

तत्र गर्भो भवेद्यस्मात्तेन प्रोक्तो जरायुजः।
ततस्तत् सप्तरात्रेण मांसपेशीत्वमाप्नुयात्॥ १९॥

वहाँ जो गर्भ रहता है वह 'जरायुज' कहलाता है। फिर वह सात रात्रियों में मांसपेशियों का रूप धारण कर लेता है।। १९।।

पक्षमात्रेण सा पेशी तच्छोणितपरिप्लुता।
ततश्चाङ्कुर उत्पन्नः पञ्चविंशतिरात्रिषु॥ २०॥

एक पक्ष (१५ दिन) आते आते वे मांसपेशियाँ रक्त से परिप्लुत हो जाती हैं। उसके बाद पचीस रात्रियों में उसमें अङ्कुर उत्पन्न हो जाता है।।२०।।

स्कन्धो ग्रीवा शिरःपृष्ठोदराणि च महामते!
पञ्चधाङ्गानि जायन्ते एवं मासेन च क्रमात्॥ २१॥

हे महामते! एक मास बाद क्रमशः उसमें स्कन्ध, ग्रीवा, शिर, पीठ, उदर—यों पाँच प्रकार से अङ्ग दिखायी देने लगते हैं।। २१।।

द्वितीये मासि जायन्ते पाणिपादादयस्तथा।
अङ्गानां सन्धयः सर्वे तृतीये सम्भवन्ति हि॥ २२॥

दूसरे मास में उसमें हाथ पैर के आकर बन जाते हैं। और तीसरे मास में उन अङ्गों की सन्धियाँ बन जाती हैं।। २२।।

अङ्गुल्यश्चापि जायन्ते चतुर्थे मासि सर्वतः।
अभिव्यक्तिश्च जीवस्य तस्मिन्नेव हि जायते॥ २३॥

चौथे महीने में उन हाथ–पैरों में सब तरफ अंगुलियाँ भी उद्भूत हो जाती हैं। उसी समय, उस गर्भ में जीव की अभिव्यक्ति भी होने लगती है।। २३।।

ततश्चलति गर्भोऽपि जनन्या जठरे स्थितः।
श्रोत्रे नेत्रे तथा नासा जायन्ते मासि पञ्चमे॥ २४॥

और वह गर्भ माता के पेट में इधर उधर हिलने–डुलने लगता है। तथा कान, आँख, नाक भी पाँचवें महीने में प्रकट होने लगते हैं।। २४।।

तथैव च मुखं श्रोणिर्गुह्यं तस्मिन् प्रजायते।
पायुर्मेढ्रमुपस्थं च कर्णच्छिद्रद्वयं तथा॥ २५॥

उसी समय मुख, कटि एवं लिङ्ग भी उद्भूत हो जाते हैं। इसी तरह गुदा, शिश्न, योनि, दोनों कानों में छिद्र भी प्रकट हो जाते हैं।। २५।।

तथैव मासि षष्ठे तु नाभिश्चापि भवेन्नृणाम्।
सप्तमे केशरोमाद्या जायन्ते च तथाष्टमे॥ २६॥
विभक्तावयवत्वं च जायते गर्भमध्यतः।
विहाय श्मश्रुदन्तादीन् जन्मान्तरसमुद्भवात्॥ २७॥

छठे मास में पुरुषों को नाभि उत्पन्न हो जाती है। सातवें मास में नाल तथा रोम और आठवें मास में सभी अङ्ग पृथक् पृथक् दिखायी देने लगते है।

अब दूसरे जन्म से पैदा हुए गर्भ में यही अन्तर रहता है कि उसे केवल दाढ़ी मूँछ एवं दाँत नहीं आते ।। २६–२७ ।।

समस्तावयवा एवं जायन्ते क्रमतः पितः!
नवमे मासि जीवस्तु चैतन्यं सर्वशो लभेत्॥ २८ ॥

हे पिता! यों इस गर्भ के क्रमशः सभी अङ्ग प्रत्यङ्ग दिखायी देने लगते हैं। नवम मास में तो इस गर्भ में जीव भी स्थायी रूप से रहने लगता है जिससे यह गर्भ चेतन हो जाता है ।। २८ ।।

गर्भस्थिति में पश्चात्ताप

मातृभुक्तानुसारेण वर्धते जठरे स्थितः।
प्राप्य वै यातनां घोरां खिद्यते च स्वकर्मतः॥ २९ ॥

वह गर्भ माता के भोजन के अनुसार माता के पेट में बढ़ता रहता है। परन्तु वह वहाँ भयङ्कर यातना सहता है, और पूर्वकृत कर्मों पर खेद प्रकाश करता रहता है ।। २९ ।।

स्मृत्वा प्राक्तनदेहोत्थकर्माणि बहुदुःखतः।
मनसा वचनं ब्रूते विचार्य स्वयमेव हि॥ ३० ॥

उस समय, पूर्वजन्म के देह से कृतकर्मों को अत्यधिक दुःख के साथ स्मरण कर वह स्वयं ही मानसिक रूप से विचार करता है— ।। ३० ।।

"एवं दुःखमनुप्राप्य भूयो जन्म लभेत्क्षितौ।
अन्यायेनार्जितं वित्तं कुटुम्बभरणं कृतम्॥ ३१ ॥

"नौ मास तक ऐसा दुःख प्राप्त करने के बाद भी इस मर्त्यलोक में जन्म लेकर मैंने केवल अन्याय से धन कमाया, तथा उससे कुटुम्बमात्र का पालन किया ।। ३१ ।।

नाराधिता भगवती दुर्गा दुर्गतिहारिणी।
यद्यस्मान्निष्कृतिर्मे स्याद्गर्भदुःखात्तदा पुनः॥ ३२ ॥
विषयान्नानुसेविष्ये विना दुर्गां महेश्वरीम्।
नित्यं तामेव भक्त्याहं पूजये यतमानसः॥ ३३ ॥

इस लम्बे अन्तराल में मैंने दुर्गविनाशिनि को भगवती दुर्गा की आराधना की। परन्तु यदि अब इस गर्भ दुःख से छुटकारा मिल जाय तो फिर मैं सांसारिक विषयभोगों का सेवन माँ दुर्गा भगवती की आज्ञा के विना कभी नहीं करूँगा। अब तो निरन्तर भक्तिपूर्वक निगृहीत मन से उन्हीं भगवती की आराधना करूँगा ।। ३२–३३ ।।

वृथा पुत्रकलत्रादिवासनावशतोऽसकृत्।
निविष्टसंसारमनाः कृतवानात्मनोऽहितम्॥ ३४॥

मैंने स्त्री–पुत्रादि की वासना में फँस कर बार बार सांसारिक भोग-विलास में ही मन लगाये रखा। यों मैंने अपना अहित ही किया।। ३४।।

तस्येदानीं फलं भुञ्जे गर्भदुःखं दुरासदम्।
तन्न भूयः करिष्यामि वृथा संसारसेवनम्''॥ ३५॥

यों, ऐसी दुःसह गर्भयातना सहकर उसका मैं फल भोग रहा हूँ। अब मैं ऐसी पापकर्ममय संसार की वासना में नहीं फसूँगा''।। ३५।।

इत्येवं बहुधा दुःखमनुभूय स्वकर्मतः।
अस्थियन्त्रविनिष्पिष्टो निर्याति योनिवर्त्मना॥ ३६॥

इस तरह स्वकर्मानुसार बहुत सा दुःख भोगकर वह गर्भस्थ अस्थियन्त्र में पिसता हुआ योनिमार्ग से निकलता है।। ३६।।

सूतिवातवशाद् घोरनरकादिव पातकी।
मेदोऽसृक्प्लुतसर्वाङ्गो जरायुपरिवेष्टितः॥ ३७॥
ततो मन्मायया मुग्धस्तानि दुःखानि विस्मृतः।
अकिञ्चित्करतां प्राप्य मांसपिण्ड इव स्थितः॥ ३८॥

वह पापी प्रसूतिजन्य वायु के कारण घोर नरक की तरह मेद, रक्त, से सब तरफ लिपटे और जरायु से घिरे हुए। मेरी माया से सम्मुग्ध होकर उन दुःखों को भूलता हुआ किङ्कर्तव्यविमूढ़ होकर मांसपिण्ड की तरह पड़ा रहता है।। ३७–३८।।

सुषुम्ना पिहिता नाडी श्लेष्मणा यावदेव हि।
तावद्वक्तुं न शक्नोति सुव्यक्तवचनं त्वसौ॥ ३९॥
न गन्तुमपि शक्नोति बन्धुभिः परिरक्ष्यते।
श्वमार्जारादिदंष्ट्रिभ्यो दूयः कालवशात्ततः॥ ४०॥

जब तक सुषुम्ना नाड़ी कफ से ढकी हुई रहती है तब तक वह स्पष्ट ध्वनि में न कुछ बोल पाता है, न अपने आप चल फिर सकता है। उस समय कुत्ते, बिल्ली आदि दात वाले पशुओं से उसकी रक्षा उसके परिवार वाले ही करते हैं।। ३९–४०।।

यथेष्टं भाषते वाक्यं गच्छत्यपि सुदूरतः।
ततश्च यौवनोद्रिक्तः कामक्रोधादिसंयुतः॥ ४१॥

जब वह क्रमशः सुव्यक्तवाणी बोलने लगता है, दूर दूर तक चलने

लगता है, तब वह यौवन में उन्मत्त होकर काम क्रोध आदि दुर्गुणों से युक्त होने लगता है।। ४१ ।।

कुरुते विविधं कर्म पापपुण्यात्मकं पितः!
कुरुते कर्मतन्त्राणि देहभोगार्थमेव हि॥ ४२ ॥

हे पिता! तब वह पाप–पुण्यमिश्रित विविध कर्म करने लगता है। तथा साथ ही देह की रक्षा तथा भोग हेतु भी नाना प्रकार के स्वच्छन्द कर्म करने लगता है।। ४२ ।।

स देहः पुरुषाद्भिन्नः पुरुषः किं समश्नुते।
प्रतिक्षणं क्षरत्यायुश्चलत्पर्णस्थतोयवत्॥ ४३ ॥

वह देह उस पुरुष (जीव) से भिन्न है। पुरुष क्या भोग करेगा! उसकी आयु धीरे धीरे उसी तरह क्षीण होने लगती है जैसे हिलते हुए पत्ते पर स्थित जल नीचे गिरने लगता है।। ४३ ।।

स्वप्नोपमं महाराज सर्वं वैषयिकं सुखम्।
तथापि न भवेद्धानिरभिमानस्य देहिनाम्॥ ४४ ॥

हे महाराज! ये समस्त सांसारिक सुख स्वप्न में प्राप्त सुख के समान हैं। तो भी प्राणी अपने वृथाभिमान का त्याग नहीं कर पाते।। ४४ ।।

न चैतद्वीक्षते देही मोहितो मम मायया।
वीक्षते केवलान्भोगाँस्तत्र शाश्वतिकानिव॥ ४५ ॥

यह प्राणी मेरी माया से मुग्ध होकर अपनी क्षणभङ्गुरता को नहीं स्मरण रखता, केवल विषयभोगों को ही अविनाशी समझता है।। ४५ ।।

अकस्माद् ग्रसते कालः पूर्णे चायुषि भूधर!
यथा व्यालोऽन्तिके प्राप्तं मण्डूकं ग्रसते क्षणात्॥ ४६ ॥

हे पर्वतराज! जैसे कोई सर्प समीप आये मेंढक को तत्काल खा जाता है उसी तरह मृत्यु भी, इस देही की आयु पूर्ण होने पर, इसे ग्रस लेती है।। ४६ ।।

"हा हन्त जन्मैतदपि विफलं यातमेव हि।
एवं जन्मान्तरमपि विफलं जायते तथा॥ ४७ ॥

"बहुत खेद की बात है कि मेरा यह जन्म भी निरर्थक ही चला गया। इसी तरह, हो सकता है, आगामी जन्म भी निरर्थक ही चला जाय"।। ४७ ।।

निष्कृतिर्विद्यते नैव विषयाननुसेविनाम्।
तस्मादात्मविचारेण त्यक्त्वा वैषयिकं सुखम्।

शाश्वतैश्वर्यमन्विच्छन्मदर्चनपरो भवेत्॥ ४८॥
तदैव जायते भक्तिरियं ब्रह्मणि निश्चला॥ ४९॥

सांसारिक विषयभोगों का सेवन करनेवालों को दुःख से किसी भी तरह छुटकारा नहीं मिल सकता। अतः साधक आत्मचिन्तन द्वारा विषय जन्य सुख से दूर रहकर शाश्वत सुख की कामना करता हुआ मेरी पूजा–अर्चना में ही निरन्तर ध्यान लगावे, तभी उसकी ब्रह्म में निश्चल भक्ति हो पायगी।। ४८–४९।।

देहादिभ्यः पृथक्त्वेन निश्चित्यात्मानमात्मना।
देहादिममतां मिथ्याज्ञानजां परिसन्त्यजेत्॥ ५०॥

अतः विवेकी देहादि से अपने को पृथक् समझकर मिथ्यादृष्टिजन्य देहादि की ममता को अपने से दूर हटा दे।। ५०।।

पितस्त्वं यदि संसारदुःखान्निर्वृत्तिमिच्छसि।
तदाराधय मां भक्त्या ब्रह्मरूपां समाहितः"॥ ५१॥

श्रीमहाभागवते उपपुराणे ब्रह्मयोगोपदेशवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः॥ १७॥

हे पिता! आप यदि इस भव–बन्धन से मुक्त होना चाहते हैं, तो मुझ ब्रह्मरूपिणी आद्या शक्ति की, समाहित चित्त से भक्तिपूर्वक, आराधना कीजिये"।। ५१।।

श्रीमहाभागवत उपपुराण में
'ब्रह्मयोगोपदेशवर्णन' नामक
सत्तरहवाँ अध्याय समाप्त॥

अट्ठारहवाँ अध्याय

[मोक्षयोगोपदेशवर्णन]

(श्रीपार्वतीगीता)

हिमालय०— **"अनाश्रितानां त्वां देवि मुक्तिश्चेन्नैव विद्यते।**
कथं समाश्रयेत्त्वां तत्कृपया ब्रूहि मे तदा॥ १॥

हिमालय— "हे देवि! जब आपके चरणारविन्दों का आश्रय ग्रहण न करने वालों की मुक्ति नहीं होती तो वह आश्रय कैसे ग्रहण करें?— कृपया इस विषय में विस्तार से बताइये।। १।।

सन्ध्येयं कीदृशं रूपं मातस्तव मुमुक्षुभिः।
त्वयि भक्तिः पराः कार्या देहबन्धविमुक्तये"॥ २॥

हे माता! आपके कौन से रूप का मुमुक्षुओं को ध्यान करना चाहिये? तथा भवबन्धन से मुक्त होने के लिये उन्हें आपकी पराभक्ति किस विधि से करनी चाहिये?"।। २।।

श्रीपार्वती०—**"मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये[१]।**
तेषामपि सहस्रेषु कोऽपि मां वेत्ति तत्त्वतः॥ ३॥

श्रीपार्वती— "हजारों मनुष्यों में कोई एक ही मनुष्य सिद्धि प्राप्ति के लिये प्रयास करता है। और उन प्रयास करनेवालों में से कोई कोई ही मुझको यथार्थ रूप से जान पाता है।। ३।।

रूपं मे निष्कलं सूक्ष्मं वाचातीतं सुनिर्मलम्।
निर्गुणं परमं ज्योतिः सर्वव्याप्यैककारणम्॥ ४॥

मेरा रूप अखण्ड है, सूक्ष्म है, वाणी से अवर्णनीय है, निर्मल है, निर्गुण है, परम ज्योतिर्मय है, सर्वव्यापी है तथा एककारण है।। ४।।

निर्विकल्पं निरालम्बं सच्चिदानन्दविग्रहम्।
ध्येयं मुमुक्षुभिस्तात! देहबन्धविमुक्तये॥ ५॥

यह निर्विकल्प है, निराधार है, सत् चित् आनन्द विग्रहवाला है। हे तात! मुमुक्षु साधकों को भवबन्धन से मुक्त होने के लिये इसी का ध्यान करना चाहिये।। ५।।

---

१. तु०— श्रीमद्भगवद्गीता, सप्तम अध्याय, तृतीय श्लोक।

अहं मतिमतां तात! सुमतिः पर्वताधिप!
पृथिव्यां पुण्यगन्धोऽहं रसोऽप्सु शशिनः प्रभा॥ ६॥

हे पर्वतराज, हे तात! मैं बुद्धिमानों में स्थित बुद्धि हूँ। मैं ही पृथिवी में स्थित पुण्य गन्ध हूँ। जल में मैं रस-रूप हूँ। चन्द्रमा की श्रेष्ठ कान्ति भी मैं ही हूँ।। ६।।

तपस्विनां तपश्चास्मि तेजश्चास्मि विभावसोः।
कामरागादिरहितं बलिनां बलमप्यहम्॥ ७॥

श्रेष्ठ तपस्वियों में मैं तप हूँ। सूर्य में मैं तेज हूँ। बलवानों में मैं काम-रागादिरहित बल हूँ।। ७।।

सर्वकर्मसु राजेन्द्र कर्म पुण्यात्मकं तथा।
छन्दसामस्मि गायत्री बीजानां प्रणवोऽस्म्यहम्॥ ८॥

हे राजेन्द्र! सभी कर्मों में मैं श्रेष्ठ पुण्यकर्म हूँ। वेद में मुझे गायत्री समझो। सभी मन्त्रबीजों में मुझे ॐ (ह्रीं) यह प्रणव अक्षर समझो।। ८।।

धर्माविरुद्धः कामोऽस्मि सर्वभूतेषु भूधर!
एवमन्येऽपि ये भावाः सात्त्विका राजसास्तथा॥ ९॥

हे पर्वतराज! मैं सभी प्राणियों में धर्मसम्मत काम हूँ। इस तरह अन्य जो भी सात्त्विक या राजस भाव हैं उन सबको मुझसे समझो।। ९।।

तामसा मत्त उत्पन्ना मदधीनाश्च ते मयि।
नाहं तेषामधीनास्मि कदाचित्पर्वतर्षभ!॥ १०॥

हे पर्वतश्रेष्ठ! तामस भाव भी मुझ से ही उत्पन्न हुए हैं। वे मेरे अधीन रहकर मुझमें स्थित हैं, मैं उनके अधीन नहीं हूँ।। १०।।

एवं सर्वगतं रूपमद्वैतं परमव्ययम्।
न जानन्ति महाराज मोहिता मम मायया॥ ११॥

हे महाराज! सर्वव्यापी मेरे इस रूप को, जो कि अद्वैत है, अविनाशी है; साधारणजन, मेरी माया से सम्मुग्ध होने के कारण, समझ नहीं पाते।। ११।।

ये भजन्ति च मां भक्त्या मायामेतां तरन्ति ते।
ममैश्वर्यं न जानन्ति ऋगाद्याः श्रुतयः परम्॥ १२॥

जो पुरुष भक्तिपूर्वक मेरी आराधना करते हैं वे इस मेरी माया से मुक्त हो जाते हैं। ऋक् आदि चारों वेदों में भी मेरा वास्तविक माहात्म्य वर्णित नहीं हो पाया है।। १२।।

सृष्ट्यर्थमात्मनो रूपं मयैव स्वेच्छया पितः!
कृतं द्विधा नगश्रेष्ठ स्त्री पुमानिति भेदतः॥ १३॥

'हे पिता! सृष्टि-रचना में सुविधा के लिये मैंने ही अपने रूप को स्वेच्छा से दो भागों में विभक्त कर दिया है। हे पर्वतश्रेष्ठ! वे दो भेद स्त्री और पुरुष— ये हैं।। १३।।

शिवः प्रधानः पुरुषः शक्तिश्च परमा शिवा॥ १४॥
शिवशक्त्यात्मकं ब्रह्म योगिनस्तत्त्वदर्शिनः।
वदन्ति मां महाराज तत्त्वमेवं परात्परम्॥ १५॥

उनमें प्रधान पुरुष शिव है, तथा शक्ति (प्रकृति) परम शिवा भगवती हैं। इसीलिए तत्त्वद्रष्टा योगिजन ब्रह्मतत्त्व को शिवशक्तिस्वरूप बताते हैं।यह तत्त्व पर से भी अधिक पर है।। १४-१५।।

सृजामि ब्रह्मरूपेण जगदेतच्चराचरम्।
संहरामि महारुद्ररूपेणान्ते निजेच्छया॥ १६॥
दुर्वृत्तशमनार्थाय विष्णुः परमपूरुषः।
भूत्वा जगदिदं कृत्स्नं पालयामि महामते!
अवतीर्य क्षितौ भूयो भूयो रामादिरूपतः॥ १७॥
निहत्य दानवान् पृथ्वीं पालयामि पुनः पुनः।
रूपं शक्त्यात्मकं तात प्रधानं यच्च मे स्मृतम्।
यतस्तया विना पुंसः कार्यं नेहात्मना स्थितम्॥ १८॥

मैं इसी ब्रह्मरूप से इस समस्त चराचर जगत् की सृष्टि करती हूँ, और अन्त में महादेव रूप से स्वेच्छा से इसका संहार करती हूँ। तथा दुष्टों से जगत् की रक्षा के लिये परम पुरुष विष्णु बनकर महामते! इस (समग्र जगत्) का पालन करती हूँ। इसी हेतु मुझे इस जगत् में समय समय पर राम आदि केरूप में अवतार लेना पड़ता है। इस तरह दानवों को बार-बार मारकर मैं इस पृथ्वी की रक्षा करती रहती हूँ। हे तात! प्रधान रूप 'शक्ति' ही है, जिसका कि लोग स्मरण करते हैं। क्योंकि उस शक्ति के विना पुरुष से कोई कार्य सिद्ध नहीं हो पाता।। १६-१८।।

रूपाण्येतानि राजेन्द्र तथा काल्यादिकानि च।
स्थूलानि विद्धि सूक्ष्मं च पूर्वमुक्तं तवानघ!॥ १९॥

परन्तु इन काली आदि को मेरा स्थूल रूप समझो; क्योंकि मैंने अपने सूक्ष्म रूप का वर्णन तो तुम को पहले कर ही दिया था।। १९।।

अनभिज्ञाय रूपं तु स्थूलं पर्वतपुङ्गव!
अगम्यं सूक्ष्मरूपं मे यद्दृष्ट्वा मोक्षभाग् भवेत्॥ २०॥
तस्मात् स्थूलं हि मे रूपं मुमुक्षुः पूर्वमाश्रयेत्॥ २१॥

हे पर्वतराज! विना स्थूल रूप को जाने वह मेरा सूक्ष्मरूप अगम्य है। परन्तु यदि कोई उसे जान ले तो उसे मोक्ष प्राप्त होना निश्चित है। अतः मुमुक्षु पहले मेरे स्थूल रूप की ही आराधना करें।। २०–२१।।

क्रियायोगेन तान्येव समभ्यर्च्य विधानतः।
शनैरालोचयेत्सूक्ष्मं रूपं मे परमव्ययम्''॥ २२॥

शास्त्रोक्त क्रियाविधियों द्वारा पहले उन स्थूल रूपों की पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर, धीरे–धीरे साधना में आगे बढ़ता हुआ साधक मेरे उस परम अविनाशी सूक्ष्म रूप का ध्यान प्रारम्भ करे''।। २२।।

हिमलाय०—**''मातुर्बहुविधं रूपं स्थूलं तव महेश्वरि!।**
तेषु किंरूपमाश्रित्य सहसा मोक्षभाग्भवेत्॥ २३॥

हिमालय— ''हे माता! महेश्वरी! आप के तो बहुत से स्थूल रूप हैं उनमें किस रूप का ग्रहण कर साधक मोक्ष की ओर बढ़ता है?।। २३।।

तन्मे ब्रूहि महादेवि यदि ते मय्यनुग्रहः।
संसारान्मोचय त्वं मां दासोऽस्मि भक्तवत्सले!''॥ २४॥

हे महेश्वरि! यदि आप का मुझ पर अनुग्रह है तो मुझे उस स्थूल रूप के विषय में विस्तार से बताइये? हे भक्तवत्सले! मैं आपका दास हूँ'' मुझे संसार से मुक्त करो।।२४।।

श्रीपार्वती०— **''मया व्याप्तमिदं विश्वं स्थूलरूपेण भूधर!**
तत्राराध्यतमा देवीमूर्तिः शीघ्रं विमुक्तिदा॥ २५॥

श्रीपार्वती— ''हे पर्वतराज! यह समग्र विश्व स्थूल रूप से मेरे द्वारा व्याप्त है। वहाँ सर्वश्रेष्ठ आराध्य देवी की मूर्ति है जो शीघ्र ही मुक्ति प्रदान करने वाली है।।२५।।

सापि नानाविधा तत्र महाविद्या महामते!
विमुक्तिदा महाराज! तासां नामानि मे शृणु॥ २६॥

हे महामते! वह महाविद्या अनेक प्रकार की है। हे महाराज! मैं उनके नाम बता रहा हूँ, सुनो।। २६।।

महाकाली तथा तारा षोडशी भुवनेश्वरी।
भैरवी बगला छिन्ना महात्रिपुरसुन्दरी॥ २७॥
धूमावती च मातङ्गी नृणां मोक्षफलप्रदा।
आसु कुर्वन् परां भक्तिं मोक्षं प्राप्नोत्यसंशयम्॥ २८॥

१. महाकाली, २. तारा, ३. षोडशी, ४. भुवनेश्वरी, ५. भैरवी, ६. बगला, ७. छिन्नमस्ता, ८. महात्रिपुरसुन्दरी, ९. धूमावती एवं १० मातङ्गी। ये सभी देवियाँ मनुष्यों को मोक्ष तक पहुँचाने वाली हैं। इनकी भक्ति (आराधना) करता हुआ कोई भी साधक निश्चय ही शीघ्र मोक्ष प्राप्त कर सकता है।। २७–२८।।

आसामन्यतमां तात क्रियायोगेन चाश्रय।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यसि निश्चितम्॥ २९॥

हे तात! इनमें से किसी एक का भी विधिपूर्वक आश्रय ग्रहण कर, मेरे में अपने मन तथा बुद्धि को लगा दे तो वह निश्चित रूप से मुझे प्राप्त कर लेगा।। २९।।

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम्।
न लभन्ते महात्मानः कदाचिदपि भूधर॥ ३०॥

हे पर्वतराज! मुझे प्राप्त कर फिर वह सदाशय मनुष्य इस दुःख के हेतुभूत, विनाशी जन्म–मरणपरम्परा को किसी भी दशा में प्राप्त नहीं करेगा।। ३०।।

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं मुक्तिदा राजन् भक्तियुक्तस्य योगिनः॥ ३१॥

ऐसा मनुष्य, जो अन्यत्र अपना चित्त न लगाकर जो सतत रूप से मेरा ध्यान करने में लगा रहता है, हे राजन्! मैं उस भक्तियुक्त पुरुष को अवश्य ही मुक्ति प्रदान करती हूँ।। ३१।।

यस्तु संस्मृत्य मामन्ते प्राणं त्यजति भक्तितः।
सोऽपि संसारदुःखौघैर्बाध्यते न कदाचन॥ ३२॥

जो अन्तिम (मृत्यु) समय में भक्तिपूर्वक मुझको स्मरण करता हुआ अपने प्राणों का त्याग करता है वह इस संसार के दुःखों की बाढ़ से कभी भी कष्ट नहीं पाता।। ३२।।

अनन्यचेतसो ये मां भजन्ते भक्तिसंयुताः।
तेषां मुक्तिप्रदा नित्यमहमस्मि महामते!॥ ३३॥

जो भक्तिपूर्वक, अन्य देवी—देवताओं में अपना मन न लगाकर मेरी ही आराधना करते हैं, हे महामते! मैं उन्हें सदा के लिये मुक्ति प्रदान कर देती हूँ।। ३३ ।।

शक्त्यात्मकं हि मे रूपमनायासेन मुक्तिदम्।
समाश्रय महाराज! ततो मोक्षमवाप्स्यसि॥ ३४॥

मेरा यह शक्ति का रूप अनायास ही मुक्ति प्रदान करने वाला है। हे महाराज! आप उसी का आश्रय ग्रहण करें। इसी के सहारे से आपको मुक्ति प्राप्त होगी।। ३४ ।।

येऽप्यन्यदेवताभक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेऽपि मामेव राजेन्द्र! यजन्ते नात्र संशयः॥ ३५॥

जो अन्य देवताओं की भक्तिपूर्वक उपासना करने वाले पुरुष हैं, हे राजेन्द्र! वे भी वस्तुतः मेरी ही उपासना करते हैं।। ३५ ।।

अहं सर्वमयी यस्मात् सर्वयज्ञफलप्रदा।
किन्तु तेष्वेव ये भक्तास्तेषां मुक्तिः सुदुर्लभा॥ ३६॥

क्योंकि मैं सर्वत्र व्यापक (सर्वमयी) हूँ। मैं सभी यज्ञों का फल प्रदान करती हूँ। किन्तु उनमें भी जो मेरे भक्त हैं, मैं उनको वह सुदुर्लभ मुक्ति भी प्रदान कर देती हूँ।। ३६ ।।

ततो मामेव शरणं देहबन्धविमुक्तये।
याहि संयतचेतास्त्वं मामेष्यसि न संशयः॥ ३७॥

अतः तूँ इस भवबन्धन से मुक्ति पाने के लिये मेरी शरण में आ जा, तो निश्चय ही तूँ मुझे प्राप्त कर लेगा।। ३७ ।।

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
सर्वं मदर्पणं कृत्वा मोक्ष्यसे कर्मबन्धनात्॥ ३८॥

तूँ जो कुछ भी करता है, जो कुछ खाता है, जो कुछ हवन करता है, या जो कुछ दान करता है, वह सब मुझे अर्पित कर इस कर्मबन्धन से छुटकारा पा सकता है।। ३८ ।।

ये मां भजन्ति सद्भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्।
न च मेऽस्ति प्रियः कश्चिदप्रियोऽपि महामते!॥ ३९॥

हे महामते! जो लोग सच्ची भक्ति से मेरा भजन करते हैं, मैं उनमें हूँ, तथा वे मुझमें हैं। वस्तुतः न कोई मुझे प्रिय है, न कोई अप्रिय।। ३९ ।।

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
सोऽपि पापविनिर्मुक्तो मुच्यते भवबन्धनात्॥ ४०॥

भले ही कोई कितना ही दुराचरण करने वाला हो, परन्तु यदि वह अनन्य श्रद्धा एवं भक्तिपूर्वक मेरी आराधना करता है, वह भी सभी पापों से छुटकारा पाकर भवबन्धन से मुक्ति पा जाता है।। ४०।।

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शनैस्तरति सोऽपि च।
मयि भक्तिमतां मुक्तिः सुलभा पर्वताधिप!॥ ४१॥

वह शीघ्र ही धर्माचरण करने लगता है, और धीरे धीरे इस संसार सागर को पार कर जाता है। हे पर्वतराज! मुझमें भक्ति रखने वालों का इस संसार से मुक्त होना बहुत ही सरल है।। ४१।।

ततस्त्वं परया भक्त्या मां भजस्व महामते!
अहं त्वां जन्मजलधेस्तारयामि सुनिश्चितम्॥ ४२॥

अतः हे महामते! तुम पराभक्ति के माध्यम से मेरी आराधना करो। मैं तुम्हें इस भवसागर से निश्चित ही पार कर दूँगी।। ४२।।

मन्मना भव मद्याजी मां नमस्कुरु मत्परः।
मामेवैष्यसि संसारदुःखैर्नैव हि बाध्यसे''॥ ४३॥

श्रीमहाभागवते उपपुराणे मोक्षयोगोपदेशवर्णनं नामाष्टादशोऽध्यायः॥ १८॥

तूँ अपना चित्त मुझमें लगा, मेरी आराधना कर। मेरी शरण में आकर मेरे सामने नतमस्तक रह। तब तूँ मुझे प्राप्त कर सकेगा और तुझे इस संसार के दुःख कोई हानि न पहुँचा पायँगें।। ४३।।

श्रीमहाभागवत उपपुराण में
'मोक्षयोग-उपदेशवर्णन' नामक
अठारहवाँ अध्याय समाप्त॥

उन्नीसवाँ अध्याय

[पार्वतीगीता का माहात्म्य]

श्रीमहादेव०—''**एवं श्रीपार्वतीवक्त्राद्योगसारं परं मुने!**

निशम्य पर्वतश्रेष्ठो जीवन्मुक्तो बभूव ह ॥ १ ॥

श्रीमहादेव जी बोले— इस तरह देवी पार्वती के श्रीमुख से उत्कृष्ट योगतत्त्व सुनकर वह पर्वतश्रेष्ठ हिमालय जीवन्मुक्त हो गया।। १।।

सापीयं शैलराजाय योगमुक्त्वा महेश्वरी।

मातृस्तन्यं पपौ बाला प्राकृतेव हि लीलया॥ २॥

वह महेश्वरी देवी भी नगाधिराज हिमालय को यह योगतत्त्व सुनाकर, साधारण शिशुओं की तरह लीला करती हुई माता का स्तन्यपान करने लगी।। २।।

गिरीन्द्रस्तु महाहर्षादकरोत् सुमहोत्सवम्।

यथा न दृष्टं केनापि श्रुतं वा केनचित्क्वचित्॥ ३॥

इसके बाद, उस पर्वतराज हिमालय ने उस अवसर पर ऐसे विशाल महोत्सव का आयोजन किया कि जो पहले न कभी देखा गया था, न सुना ही गया था।। ३।।

षष्ठेऽह्नि षष्ठीं सम्पूज्य सम्प्राप्ते दशमेऽहनि।

पार्वतीत्यकरोन्नाम सान्वयं पर्वताधिपः॥ ४॥

छठे दिन, षष्ठी का पूजन कर, दशवें दिन उस पर्वतराज ने अपनी उस कन्या का नाम 'पार्वती' रखा।। ४।।

एवं त्रिजगतां माता नित्या प्रकृतिरुत्तमा।

सम्भूय मेनकागर्भाद्धिमालयगृहे स्थिता॥ ५॥

इस तरह वह अविनाशी त्रिजगन्माता, परा प्रकृति, मेनका की कोंख से जन्म लेकर, हिमालय के घर में रहने लगी।। ५।।

हिमालयाय पार्वत्या कथितं योगमुत्तमम्।

यः पठेत्सुलभा मुक्तिस्तस्य नारद जायते॥ ६॥

हे नारद! उन पार्वती देवी ने हिमालय के प्रति जिस उत्तम योग का प्रवचन किया था, उसके नित्य पारायणकर्ता को अतीव सरलता से भवसागर से मुक्ति मिल जाती है।। ६।।

तुष्टा भवति शर्वाणी नित्यं मङ्गलदायिनी।
जायते च दृढा भक्तिः पार्वत्यां मुनिपुङ्गव॥ ७॥

हे मुनिपुङ्गव! इस पारायण से वह नित्या पार्वती देवी, सबको मङ्गल प्रदात्री, प्रसन्न होती हैं तथा उनमें साधक की दृढ़ भक्ति बन जाती है।। ७।।

अष्टम्यां च चतुर्दश्यां नवम्यां भक्तिसंयुतः।
पठन् श्रीपार्वतीगीतां जीवन्मुक्तो भवेन्नरः॥ ८॥

जो साधक अष्टमी, चतुर्दशी एवं नवमी के दिन भक्तिपूर्वक इस पार्वतीगीता का पारायण (पाठ) करता है, वह पुरुष जीवन्मुक्त हो जाता है।। ८।।

शरत्काले महाष्टम्यां यः पठेत् समुपोषितः।
रात्रौ जागरितो भूत्वा तस्य पुण्यं ब्रवीमि किम्॥ ९॥

शरत्काल में अष्टमी के दिन जो साधक उपवासव्रत रखकर इसे पढता है, रात्रि में जागरण करते हुए इस भगवती की उपासना करता है, उसके पुण्य के माहात्म्य का क्या वर्णन किया जाय!।। ९।।

स सर्वदेवपूज्यश्च दुर्गाभक्तिपरायणः।
इन्द्रादयो लोकपालास्तदाज्ञावशवर्तिनः॥ १०॥

वह दुर्गाभक्त साधक सभी देवताओं की श्रद्धा का पात्र बन जाता है। यहाँ तक कि इन्द्र आदि लोकपाल भी उसकी आज्ञा के वश में हो जाते हैं।।१०।।

स्वयं दैवींकलामेति साक्षाद्देव्याः प्रसादतः।
नश्यन्ति तस्य पापानि ब्रह्महत्यादिकान्यपि॥ ११॥

और साधक भगवती की कृपा से स्वयं दैवीकला को प्राप्त कर लेता है। उसके प्रभाव से उसके ब्रह्महत्यादि महापातक भी (यदि उसने किये हों) विनष्ट हो जाते हैं।। ११।।

पुत्रं सर्वगुणोपेतं लभते चिरजीविनम्।
नश्यन्ति रिपवस्तस्य नित्यं प्राप्नोति मङ्गलम्॥ १२॥

वह, उसके प्रताप से, सर्वगुणसम्पन्न चिरायुष्क पुत्र प्राप्त करता है। उसके सभी शत्रु विनष्ट हो जाते हैं। वह सर्वत्र मङ्गल (शुभ) प्राप्त करता है।। १२।।

अमावास्यां तिथिं प्राप्य यः पठेद्भक्तिसंयुतः।
सर्वपापविनिर्मुक्तः स दुर्गातुल्यतामियात्॥ १३॥

अमावस्या के दिन जो उपासक भक्तिपूर्वक इस पार्वतीगीता का पारायण करता है वह सभी पापों से छुटकारा पाकर भगवती के सदृश शक्तिसम्पन्न बन जाता है।। १३ ।।

निशीथे पठते यस्तु बिल्ववृक्षस्य सन्निधौ।
तस्य सम्वत्सराद्दुर्गा स्वयं प्रत्यक्षमेति वै॥ १४॥

और जो साधक बिल्व वृक्ष के नीचे बैठकर अर्धरात्रि के समय इस गीता का पाठ करता है, उसे यह जगन्माता पार्वती दुर्गा एक वर्ष की अवधि में अवश्य ही प्रत्यक्ष दर्शन देती हैं।। १४।।

किमत्र बहुनोक्तेन शृणु नारद तत्त्वतः।
अस्याः पाठसमं पुण्यं नास्त्येव पृथिवीतले॥ १५॥

हे नारद! इस विषय में अधिक क्या कहा जाय, आप सार (तत्त्व) रूप में इतना ही समझ लें कि इस मर्त्यलोक में इस भगवती गीता के पाठ के समान पुण्यफल अन्य किसी विधान से प्राप्त नहीं हो सकता।। १५।।

तपसां यज्ञदानादिकर्मणामिह विद्यते।
फलस्य संख्या नैतस्य विद्यते मुनिपुङ्गव॥ १६॥

हे मुनिपुङ्गव! तप तथा यज्ञ एवं दानादि के पुण्यों की सङ्ख्या तो बतायी जा सकती है, परन्तु भगवती द्वारा प्रोक्त इस पार्वतीगीता के पाठ से प्राप्त पुण्य की गणना नहीं की जा सकती।। १६।।

इत्युक्तं ते यथा जाता नित्यापि परमेश्वरी।
लीलया मेनकागर्भे भूयः किं श्रोतुमिच्छसि?"॥ १७॥

श्रीमहाभागवते उपपुराणे पार्वतीगीतामाहात्म्यवर्णनं
नामैकोनविंशतितमोऽध्यायः॥ १९॥

इस प्रकार, हे नारद! वह परमेश्वरी भगवती हिमालय के घर में स्वकीय लीला हेतु जिस प्रकार मेनका की कोंख से अवतरित हुई, वह सब मैंने तुमको सुना दिया। अब इस विषय में तुम्हारी अन्य क्या जिज्ञासा है— कहो?।। १७।।

श्रीमहाभागवतउपपुराण में
'पार्वतीगीतामाहात्म्य वर्णन' नामक
उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त।।